ISSN - 2231-1130
वर्ष–सप्तम् ; सितम्बर–2016

समाजवादः सिद्धान्त व व्यवहार (भारत के संदर्भ में)

डा0 अंशु केडिया*

समाजवाद (Socialism) एक आर्थिक–सामाजिक दर्शन है। समाजवादी व्यवस्था में धन–सम्पत्ति का स्वामित्व और वितरण समाज के नियन्त्रण में रहता है एवं निजी सम्पत्ति पर आधारित अधिकारों का विरोध करता है। राजनीति के आधुनिक अर्थों में समाजवाद को खुली बाजार व्यवस्था के सिद्धांत के विपरीत देखा जाता है। समाजवाद एक लोकप्रिय विषय है जिस पर भिन्न भिन्न दृष्टिकोणों से बहुत कुछ लिखा गया है।

ब्रिटिश राजनीति विज्ञानी हैरॉल्ड लॉस्की ने कभी समाजवाद को एक ऐसी टोपी कहा था जिसे कोई भी अपने अनुसार पहन लेता है। समाजवाद की विभिन्न किस्में लॉस्की के इस चित्रण को काफी सीमा तक सही सिद्ध करती है। समाजवाद की एक किस्म विघटित हो चुके सोवियत संघ के सर्वसत्तावादी नियंत्रण में चरितार्थ होती है जिसमें मानवीय जीवन के हर सम्भव पहलू को राज्य के नियंत्रण में लाने का आग्रह किया गया था। उसकी दूसरी किस्म राज्य को अर्थव्यवस्था के नियमन द्वारा कल्याणकारी भूमिका निभाने का मंत्र देती है। भारत में समाजवाद की एक अलग किस्म के सूत्रीकरण की कोशिश की गयी है। राममनोहर लोहिया, जय प्रकाश नारायण और नरेन्द्र देव के राजनीतिक चिंतन और व्यवहार से निकलने वाले विचार को 'गाँधीवादी समाजवाद' की संज्ञा दी जाती है। लेकिन समाजवाद की आधुनिक और औपचारिक परिकल्पना फ्रांसीसी विचारकों सैं–सिमों और चार्ल्स फूरिए तथा ब्रिटिश चिंतक राबर्ट ओवेन की वैचारिक योगदान से निकली है। समाजवाद के ये शुरुआती विचारक व्यक्तिवाद और प्रतिस्पर्धा की जगह आपसी सहयोग पर आधारित समाज की कल्पना करते थे। उन्हें विश्वास था कि मानवीय स्वभाव और समाज का विज्ञान गढ़ कर सामाजिक

* असिस्टेंट प्रोफेसर, समाज शास्त्र, ए.पी.सेन मेमोरियल गर्ल्स (पी.जी.) कॉलेज, लखनऊ।

ताने–बाने को बेहतर रूप दिया जा सकता है

उद्योगीकरण और शहरीकरण की तेज गति तथा पारम्परिक समाज के अवसान जैसी उथल–पुथल ने मार्क्स और एंगेल्स द्वारा प्रतिपादित वैज्ञानिक समाजवाद के विचार की पृष्ठभूमि को विकसित किया। मार्क्स ने सैं–सिमों, फूरिए और ओवेन के विचारों से प्रेरणा तो ली, लेकिन अपने 'वैज्ञानिक' समाजवाद के मुकाबले उनके समाजवाद को 'काल्पनिक' घोषित कर दिया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय कांग्रेस ने स्पष्ट रूप से समाजवाद को स्वीकार किया है। उसके पूर्व वह समाजवादी और उसकी विरोधी सभी राष्ट्रीय विचारधाराओं का एक संयुक्त मोर्चा थी, परंतु उस समय भी वह समाजवादी विचारों से प्रभावित थी। एक प्रकार से उसने कंराची प्रस्ताव (1931) में कल्याणकारी राज्य का आदर्श स्वीकार किया था, कांग्रेस मंत्रिमंडलों (1937) के बनने के बाद सुभाषचंद्र बोस की अध्यक्षता में एक योजना समिति की नियुक्ति की गई थी और स्वराज्यप्राप्ति के बाद तुरंत ही वर्गविहीन समाज का विचार सामने आ गया। स्वराज्य के बाद यद्यपि संगठित समाजवादी दल कांग्रेस से अलग हो गए, तथापि उसके अंदर समाजवादी तत्व, विशेषकर उसके सर्वप्रमुख नेता जवाहरलाल नेहरू, प्रभावशील रहे, अतः कांग्रेस के आवढी अधिवेशन (1957) में समाजवादी ढंग का समाज और भुवनेश्वर अधिवेशन (1964) में लोकतंत्रात्मक समाजवाद का लक्ष्य स्वीकार किया गया। उसका नियोजित अर्थव्यवस्था, समाज सुधार, कल्याण राज्य और लोकतंत्र में विश्वास था और उसकी विदेशी नीति पाश्चात्य तथा पूर्वी गुटों के शक्ति संघर्ष से अलग रहकर शांति की शक्तियों को मजबूत करने की थी ।

1976 में 42 वें संशोधन द्वारा संविधान की प्रस्तावना को बदला गया । उसी के द्वारा 'सोशलिस्ट' तथा सेकुलर अवधारणाओं को संविधान में जोड़ा गया। मूल संविधान में भारत को 'लोकतांत्रिक गणराज्य' कहा गया था, लेकिन इस संशोधन के बाद वह 'लोकतांत्रिक समाजवादी धर्मनिरपेक्ष

गणराज्य' में बदल दिया गया ।

देश की आजादी के साथ भारत ने मिश्रित अर्थव्यवस्था अपनायी थी। वे क्षेत्र जो अधोसंरचना से जुड़े थे जिसमें अधिक पूंजी निवेश की जरूरत थी या सामरिक महत्व के थे सरकारी नियंत्रण में रखे गए व शेष निजी के नियंत्रण में। यह व्यवस्था 1990 तक चलती रही जब तक वैश्विक अर्थव्यवस्था में उठापटक शुरू नहीं हुयी और विश्व, कुछ एक अपवादों को छोड़कर एकतरफा पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की तरफ नहीं झुका। भारतीय सरकारें जनमानस व गठबंधन राजनीति के दबाव के कारण कभी धीरे से तो कभी तेजी से परन्तु पूंजीवाद की राह पर बढ़ती ही गयी।

पूर्वी यूरोप की साम्यवादी सरकार के पतन , 20 वीं सदी के उत्तर्राद्ध व 21सदी के पूर्वाद्ध में वैश्वीकरा, उदारीकरण व निजीकरण प्रक्रियाओं की वैश्विक स्तर पर स्वीकृति से 'समाजवाद की मृत्यु' जैसे शब्दों को हवा मिलने लगी। वैश्वीकरण ,उदारीकरण व निजीकरण की प्रक्रिया, आर्थिक सुधार से जुड़ी हैं। आर्थिक सुधार मसलन आर्थिक क्षेत्र में सरकारी अहस्तक्षेप की नीति। यह नीति सरकारों से अपेक्षा करती है कि वह आर्थिक व सामाजिक क्षेत्र में अपना हस्तक्षेप कम करती जाये व व्यवस्था को निजी क्षेत्र के माध्यम से फलने फूलने का अवसर दे।

पूंजीवाद के इस वैश्विक दबाव ने ही समाजवाद के आलोचकों को यह कहने का अवसर दे दिया कि समाजवाद मर गया, पर समाजवाद क्या कभी वास्तव में मर सकता है? यहां यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि हम समाजवाद को केवल यूरोपीय घटना चक्रों मे ही क्यों देखते हैं इसकी मूलभावना में क्यों नहीं। वास्तव में जब तक सामाजिक सांस्कृतिक व आर्थिक आधार पर मनुश्य–मनुश्य में भेद रहेगा समाजवाद की भावना जीवन्त रहेगी। इस विचारधारा के पोषण में गौतम बुद्ध से लेकर मार्क्स–गिल्स, गांधी व डा0 लोहिया के विचार महत्वपूर्ण हो जाते है परन्तु यह विचारधारा कुछ पूर्व निश्चित सिद्धांतों और प्रणालियों से कही उन्मुक्त है व सतत गगतिमान हैं।

वर्तमान में भारत डार्विन की सर्वाइवल आफ द फिटेस्ट नीति का

अनुगामी बन चुका है जो सक्षम के पक्ष में झुकी है। रिचर्ड जे0 बार्नेट और रोनाल्ड ई म्यूलर की पुस्तक 'ग्लोबल रीच' से लिये गये कार्यक्रम आज नीति नियंताओं की प्राथमिकता बन गये हैं। विदेशी तकनीक पर निर्भरता, सरकारी क्षेत्र का निजीकरण, खास लोगों व उनके बच्चों के लिये शिक्षा रोजगार के खास साधन व अन्य की अवहेलना, गरीबों पर परोक्ष कर बढ़ाते जाना, निजीकरण व संविदाकरण की नीतियों से श्रमसभों व जन प्रतिनिधि संस्थानों को हतोत्साहित करना, कुछ व्यक्तियों को इतना शक्तिशाली करना कि वह कारपोरेट कम्पनियों से एक वर्ग विशेष के लिये सौदेबाजी कर सके, राष्ट्रीय नि'ठा के परे जाकर इसी एक वर्ग विशेष के लिये प्रचार प्रसार माध्यमों को लगाना, लगातार व्यस्त रखने वाले खेलकूद, उत्सव, मेले, अभियानों को चलाकर जनता को वास्तविक मुददों से भटकाने वाले अभियानों को शह देने की रणनीति इसके उदाहरण हैं।यह कार्यक्रम कभी भी जनोन्मुख नहीं हो सकते। यहाँ रिलायंस कम्पनी को अरबो रूपये का मुनाफा होता है और हम समझते है कि देश का जीडीपी दो फीसदी बढ़ गया है द्यक्योकि यह विकास मापक आर्थिक पैमाना यही है कि जब रिलायंस का पैसा बढेगा तो देश का जीडीपी बढेगा द्य लेकिन उसके बढ़ने से बाकि समाज की आमदनी बढ़ी क्या? क्या जो कल दो रोटी के लिए संघर्ष कर रहा था उसे भर पेट भोजन मिलने लगा? सरकारों का पूरा रूझान विदेशी व निजी निवेश व इसके लिये अधोसंरचना विकास पर केन्द्रित हो गया है। बजट आबंटन में सेवा क्षेत्र (शिक्षा, स्वास्थ्य आदि) की हिस्सेदारी कम हो गयी है। भारत जैसा देश जो गांवों में बसता है वैविध्यपूर्ण सामाजिक–सांस्कृतिक व आर्थिक विशेषताओं से घिरा है, वहां पर देशी व विदेशी कारपारेट द्वारा थोपित नीतियां कभी भी ग्रामीण जन के लाभोन्मुख नहीं हो सकती। अधोसंरचनात्मक विकास के नाम पर कृषि योग्य जमीन पर गि) दृष्टि ने समस्या को और जटिल बना दिया है। आज जब जरूरत है ऐसी नीतियों के बनाने की जो ग्राम कन्द्रित हों, तब शहरों को केन्द्र में रखकर ही विकास की नीतियां बनायी जा रहीं हैं। जर्बदस्ती थोपित व शहर केन्द्रित नीतियां पुरातन आत्मनिर्भर ग्रामीण

अर्थव्यवस्था को छिन्न भिन्न कर ग्रामीणों में पलायन, खाद्यान्न सकंट, आत्महत्याओं के दौर को बढ़ा रही है। आज सबके पेट भरने वाले किसान को ही दो जून की रोटी जुटाना मुश्किल हो गया है नतीजतन गांव का हर दूसरा व्यक्ति रोजगार के लिये पलायन करने के लिये मजबूर हो रहा है।

औद्योगिक क्रांति के गर्भ से पैदा मशीनी सभ्यता को गांधी जी मनुष्य की नैसर्गिक शक्तियों को क्षीण करने वाला मानते थे। इसके विकल्प के रूप में उन्होने ऐसी सभ्यता की बुनियाद रखने की कोशिश की जिसमें मानव और प्रकृति के बीच समरसता का सम्बन्ध हो। विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था युक्त आत्मनिर्भर गांव की कल्पना की। बड़े पैमाने पर उद्योग की जगह कुटीर उद्योग और छोटे पैमाने के उत्पादन को प्रमुखता दी तथा अधिकाधिक उपभोग के स्थान पर सादगी बरतने तथा भौतिक आवश्यकताओं की दौड़ से बचने की सलाह दी। दरिद्रनारायण व सादा जीवन उच्च विचार जैसे यदि गांधी जी विचारों को माना जाता तो आर्थिक समस्याओं से जूझना नहीं पड़ता। वैश्विक ग्लोबल वार्मिंग के बढ़ते खतरे का सामना नहीं करना पड़ता। उत्तराखंड, जम्मू कश्मीर जैसी भयावह प्राकृतिक घटनाओं के आमंत्रण से भी बचाव हो जाता व आतंकवाद, नस्ल, लिंग, जाति आधारित किसी भी प्रकार के भेदभाव, भ्रष्टाचार, गरीबी–अमीरी के भेद जैसी समस्यां, जन्म ही नहीं लेती।

यहां पर लोहिया जी के समाजवादी विचारों को भी समझना जरूरी हो जाता है उनका सारा आंदोलन समाजवाद को ही स्थापित करने के लिये केन्द्रित रहा। उन्होने सप्तक्रांति के माध्यम से समाजवाद का मुखरता से खाका खींचा। इस खाके में नर–नारी के बीच समानता की बात की, काले–गोरे के बीच नस्लीय भेद दूर करने की बात की, वर्ण –जाति आधारित सामाजिक–सांस्कृतिक भेद उन्मूलन की बात की, विदेशी गुलामी से छुटकारा और लोकराज्य स्थापित करने की आवश्यकता पर जोर दिया। बुर्जआजी आर्थिक व्यवस्था का विरोध किया। व्यक्तिगत स्वतंत्रता की हिमायत की और आतंक, अस्त्र–शस्त्र के उपयोग की खिलाफत की। इस सप्तक्रांति के माध्यम

से लोहिया जी ने अपने सपनों के जिस भारत को गढ़ने का सपना संजोया वह आज भी अधूरा ही है। विभिन्न संवैधानिक व विशेष अधिकारों के मिलने के बावजूद आज भी बेटी के पैदा होने पर घर में मायूसी फैल जाती है। आज भी पितृसत्तात्मक पूंजीवादी व्यवस्था ही समाज में महिलाओं का स्थान निर्धारित कर रही है। पश्चिमी देशों की श्रेष्ठता की अंध भावना भारतीय जनमानस की वैचाारिकी व जीवनशैली में परिलक्षित हो रही है। विभिन्न प्रयासों के बावजूद भी अस्पृश्यता व दलित उत्पीड़न के समाचारा पढ़ने व सुनने को मिल जाते हैं। अंग्रेजी उपनिवेशवाद से बड़ी जददोजहद के बाद मिली मुक्ति के बाद आज हम पुनः बहुराष्ट्रीय कम्पनी शासित नव उपनिवेशवाद में घिरते जा रहे हैं। किसी तरह एफ डी आई आ, इसके लिये हर तरह के प्रयास किये जा रहे हैं। रेल व्यवस्था जो आज भी लाभ की स्थिति में है उसमें भी 100 प्रतिशत विदेशी निवेश की स्वीकृति दे दी गयी है। आज का भारत भ्रष्ट व निरंकुश राजनैतिक औद्योगिक दिग्गजों के गठजोड़ में बदल गया है। भारत में जो महल दिख रहें हैं, वह ताकत की ऐंठ का प्रर्दशन है यह ताकत आयी उस अथक परिश्रम से थी जो वास्तव में करोड़ों गरीबों ने किया। पहले ये महल सामंती महाराजाओं व नवाबों के थे आज वे दलाल स्ट्रीट और नरीमन प्वाइंट पर रहने वालों के बन गए हैं। लोहिया की उन बातों को आज थॉमस पिकेटी की चर्चित पुस्तक 'कैपिटल इन द ट्वेंटी फर्स्ट सेंचुरी' के माध्यम से देखेंगे, तो वे ज्यादा प्रासंगिक होंगी. थॉमस पिकेटी कहते हैं कि पूंजीवाद और साम्यवाद के बीच 1917 से 1989 तक चले द्वंद्वबहुत सारी सच्चाइयां ढक गये थे, क्योंकि उन्हें पक्षपाती ढंग से देखा जाता था. अब जबकि दुनिया एक ही खेमे में सिमट गयी है, तो बहुत कुछ साफ होता जा रहा है. पिकेटी कहते हैं कि उदारीकरण के दौरान दुनिया में असमानता तेजी से बढ़ी है. भारत में इसका रिकॉर्ड अमर्त्य सेन और ज्यां द्रेज अपनी किताब 'द अनसर्टेन ग्लोरी' में पेश करते हैं. पिकेटी ने धन के इतिहास का विस्तृत तौर पर विवेचन करके बताया है कि धन का भंडार जितनी तेजी से बढ़ता है, उतनी तेजी से काम करनेवालों की आय नहीं बढ़ती. इसलिए दुनिया में आज जो आर्थिक ढांचा

चल रहा है, उसमें असमानता बढ़नी ही है.

समस्याओं के इस दौर में समाजवाद की आवश्यकता को केवल एक सैद्धान्तिक संतुष्टि के रूप में समझना समस्या से पलायन करना है। यह केवल एक सिद्धान्त नहीं है वरन एक व्यावहारिक प्रक्रिया है जो सदैव गतिमान है। स्वतंत्रता, समानता व बंधुत्व की भावना को लागू करने के लिये इसकी जरूरत को आज और भी शिददत से महसूस किया जा रहा है।

संदर्भ समूह –

1. मस्त राम कपूर, कल की राजनीति, प्रकाशक–लेखक मंच, मयूर विहार, नयी दिल्ली 1997
2. के विक्रम राव, डा0 राम मनोहर लोहिया आज के संदर्भ में, अनामिका पबिलशर्स एंड डिस्ट्रीव्यूटर्स (प्रा0) लिमिटेड नयी दिल्ली 2012
3. कैपिटलिज्म, सोशलिज्म एण्ड डेमोक्रेसी, जोसेफ शुएम – पीटर 1942, हार्पर एण्ड ब्रदर्स।
4. https://en-wikipedia-org/wiki/Socialism
5. समाजवाद रंजन के कलम से ranjanwa-blogspot-com/2016/04/blog&post_8-html
6. समाजवाद https://hi-wikipedia-org/s/5-8 मुक्त ज्ञानकोश विकिपीडिया से
7. भारतीय समाजवाद https://hi-wikipedia-org/s/2177, मुक्त ज्ञानकोश विकिपीडिया से
8. एसेज ऑन सिग्नी फीकेंस ऑफ सोशलिज्म इन हिन्दी
9. www-essaysinhindi-com/law/socialism/lektokn&dh---/4059]Article shared by : Rashmi B
10. उदारीकरण के समय में लोहिया का समाजवाद by Prabhat Khabar
12. www-prabhatkhabar-com/news/special&news/story/365164-html